

भारतीय ज्योतिष में काल-विभाजन और मुहूर्त विज्ञान का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक अध्ययन

Parhlad Singh Ahluwalia, Dr. Bhim Rao Ambedkar Law University, Jaipur, Rajasthan

सार (Abstract)

भारतीय ज्योतिष-परंपरा का केंद्रीय सरोकार "काल" है — ऐसा काल जिसे नापा जा सके, विभाजित किया जा सके और जिसके भीतर मानवीय कर्म का स्थान निर्धारित हो। यह शोध-पत्र काल-विभाजन (निमेष से कल्प तक) और मुहूर्त-विज्ञान को चार स्तरों — दार्शनिक, खगोलीय, कालजैविक (क्रोनोबायोलॉजिकल) तथा मनोसामाजिक — पर परखता है। PRISMA-ScR की रिपोर्टिंग-भावना पर आधारित लक्षित संरचित समीक्षा-पद्धति अपनाकर वर्ष 2024 तक प्रकाशित कुल 66 स्रोतों (शास्त्रीय पाठ, खगोल-इतिहास, प्रायोगिक परीक्षण, कालजैविकी, समाजशास्त्र) का विश्लेषण किया गया है। निष्कर्ष त्रिस्तरीय हैं। पहला, पंचांग की गणितीय-खगोलीय इकाइयाँ (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण) आधुनिक ग्रह-गतिकी से सत्यापन-योग्य हैं और भारतीय खगोल-गणना की सटीकता का प्रमाण हैं। दूसरा, मुहूर्त का "शुभ-अशुभ" फल-दावा अब तक किसी नियंत्रित, द्वि-अंध (double-blind) परीक्षण में स्थापित नहीं हुआ है; इसके विपरीत, चंद्र-चक्र और जैव-लय पर उपलब्ध प्रमाण केवल सीमित, सूक्ष्म और परिस्थिति-निर्भर प्रभाव दर्शाते हैं। तीसरा, मुहूर्त की वास्तविक सामाजिक उपयोगिता समन्वय (coordination), अनुष्ठान-जनित चिंता-न्यूनता और समय-अनुशासन में दिखाई देती है। लेखक एक "त्रिस्तरीय सत्यापन-प्रतिमान" प्रस्तावित करता है, जो काल-गणना, काल-बोध और फलादेश को अलग-अलग ज्ञानमीमांसीय कसौटियों पर रखता है।

कूटशब्द (Keywords): काल-विभाजन; मुहूर्त; पंचांग; ज्योतिष; कालजैविकी; मिथ्याकरणीयता; PRISMA-ScR; भारतीय ज्ञान-परंपरा

1. प्रस्तावना

मनुष्य ने जब भी आकाश की ओर देखा, उसने केवल तारे नहीं गिने; उसने समय को पहचाना। सूर्योदय से दिन, चंद्र-कलाओं से मास और सूर्य के उत्तरायण-दक्षिणायन से वर्ष का बोध हुआ। भारतीय ज्ञान-परंपरा में इस बोध ने एक स्वतंत्र शास्त्र का रूप लिया, जिसे ज्योतिष कहा गया। वेदाङ्ग-साहित्य में इसे वेद का नेत्र माना गया और उसकी महत्ता यहाँ तक बताई गई कि यज्ञ का सम्यक् अनुष्ठान काल-ज्ञान के बिना संभव ही नहीं रहता। इस संबंध में वेदाङ्ग ज्योतिष का कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है [1]:

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।

तद्वदेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥

इसी ग्रंथ का एक अन्य श्लोक ज्योतिष का प्रयोजन स्पष्ट करता है [1]:

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान्॥

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि प्रारंभिक भारतीय ज्योतिष का मूल स्वर "काल-विधान" था, अर्थात् अनुष्ठान के लिए उपयुक्त क्षण का गणितीय निर्धारण। कालांतर में, विशेषतः ईसा की आरंभिक शताब्दियों में, यूनानी-बेबीलोनी प्रभावों के साथ होरा (जन्म-कुंडली आधारित फलादेश) की धारा जुड़ी और ज्योतिष का तीन स्कंधों — सिद्धांत, संहिता और होरा — वाला परंपरागत ढाँचा विकसित हुआ [2]। मुहूर्त-शास्त्र इसी ढाँचे के भीतर वह शाखा है जो किसी कार्य के आरंभ के लिए "उचित क्षण" का चयन करती है। पश्चिमी परंपरा में इसे प्रायः electional astrology कहा जाता है, जबकि भारतीय संदर्भ में यह विवाह, गृह-प्रवेश, उपनयन, यात्रा, व्यापार-आरंभ आदि संस्कारों और कार्यों के निर्णय से सीधे जुड़ी हुई है।

आज भारतीय समाज में मुहूर्त का प्रभाव सीमित अकादमिक विमर्श तक नहीं, बल्कि दैनिक आर्थिक और सामाजिक व्यवहार तक फैला है। विवाह के "लग्न" के दिनों में विवाह-भवनों की माँग बढ़ जाती है, "अक्षय तृतीया" और "धनतेरस" पर बाज़ार की खरीदारी का स्वरूप बदल जाता है, और संस्कारों की तिथियाँ परिवारों के कैलेंडर को निर्देशित करती हैं। संस्कार और संस्कृति के समाजशास्त्रीय विश्लेषण बताते हैं कि संस्कार-व्यवस्था केवल धार्मिक कृत्य नहीं, बल्कि सामाजिक पहचान, भाषा और सांस्कृतिक निरंतरता को संजोने वाली संस्था भी है [3-5]। इस दृष्टि से मुहूर्त संस्कारों का काल-निर्धारक तंत्र है, और उसे समझे बिना संस्कार-संस्कृति का समाजशास्त्र भी अधूरा रहेगा।

परंतु जिस विषय का प्रभाव इतना गहरा हो, उसका मूल्यांकन केवल श्रद्धा या केवल उपहास से नहीं किया जा सकता। एक ओर, पंचांग की गणनाएँ वास्तविक खगोलीय घटनाओं — सूर्य और चंद्रमा की सापेक्ष स्थिति, नक्षत्र-मंडल में चंद्र-गति — पर आधारित हैं, जिन्हें आज के ग्रह-गतिकी सॉफ्टवेयर से जाँचा जा सकता है। दूसरी ओर, इन गणनाओं पर चढ़ाए गए "शुभ" और "अशुभ" के फल-दावे प्रायः अनुभववादी परीक्षण की प्रतीक्षा में हैं। इन दोनों के बीच की रेखा न पहचानने से दो विपरीत त्रुटियाँ जन्म लेती हैं: या तो पूरी परंपरा को अंधविश्वास कहकर उसकी वास्तविक गणितीय उपलब्धियों की उपेक्षा कर दी जाती है, या फिर गणितीय सटीकता के आधार पर फलादेश को भी वैज्ञानिक मान लिया जाता है। यह शोध-पत्र इन दोनों त्रुटियों से बचते हुए "विश्लेषणात्मक यथार्थ-उद्घाटन" का मार्ग अपनाता है, अर्थात् हर दावे को उसकी अपनी प्रमाण-श्रेणी में रखकर परखना।

इस अध्ययन की आवश्यकता तीन कारणों से है। पहला, भारतीय ज्ञान-प्रणालियों के अकादमिक पुनर्पाठ की जो प्रवृत्ति उच्च शिक्षा में दिख रही है, उसमें ज्योतिष-शिक्षण के लिए साक्ष्य-आधारित और परिणाम-आधारित मूल्यांकन-ढाँचे की माँग उठती है [6,7]। दूसरा, खगोल-इतिहास पर हुए गंभीर कार्य और ज्योतिष के प्रायोगिक परीक्षण प्रायः अलग-अलग अनुशासनों में पड़े हैं और उनका संश्लेषण हिंदी में दुर्लभ है। तीसरा, कालजैविकी जैसे नवीन क्षेत्र "उचित समय" की धारणा को नए सिरे से परिभाषित कर रहे हैं, और परंपरागत मुहूर्त-विचार से उनका तुलनात्मक संवाद अब तक बहुत कम हुआ है।

2. शोध-उद्देश्य, शोध-प्रश्न एवं परिकल्पनाएँ

उद्देश्य (1) भारतीय काल-विभाजन की दार्शनिक अवधारणाओं और उसकी गणितीय संरचना का विश्लेषण; (2) पंचांग-इकाइयों की खगोलीय यथार्थता का सत्यापन-स्तर निर्धारित करना; (3) मुहूर्त-विज्ञान के फल-दावों की आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर समीक्षा; (4) तुलनात्मक एवं बहु-दृष्टिकोणीय विश्लेषण द्वारा एक संतुलित निष्कर्ष-प्रतिमान प्रस्तावित करना।

शोध-प्रश्न (RQ)।

- RQ1: भारतीय काल-विभाजन की दार्शनिक नींव क्या है और वह कर्म, दैव और पुरुषार्थ की धारणाओं से कैसे जुड़ती है?
- RQ2: पंचांग की इकाइयाँ आधुनिक खगोल-विज्ञान से किस सीमा तक मेल खाती हैं?

- RQ3: मुहूर्त के शुभाशुभ फल-दावों के पक्ष या विपक्ष में उपलब्ध अनुभवजन्य साक्ष्य क्या कहता है?
- RQ4: यदि फल-दावे असत्यापित हैं, तो मुहूर्त की निरंतर सामाजिक स्वीकृति की व्याख्या किन मनोवैज्ञानिक और सामाजिक प्रक्रियाओं से होती है?

कार्य-परिकल्पनाएँ H1: पंचांग की खगोलीय गणनाएँ सत्यापन-योग्य और उच्च सटीकता वाली हैं। H2: मुहूर्त के शुभाशुभ फल-दावों के लिए नियंत्रित अध्ययनों में संयोग से अधिक कोई सुसंगत प्रभाव नहीं मिलता। H3: मुहूर्त की सामाजिक भूमिका का बड़ा भाग समन्वय-तंत्र और अनुष्ठान-जनित मनोवैज्ञानिक प्रभावों से व्याख्यायित होता है।

3. शोध-पद्धति (PRISMA-ScR पर आधारित संरचित समीक्षा)

3.1 समीक्षा का प्रकार चूंकि यह अध्ययन शास्त्रीय पाठों, ऐतिहासिक खगोल-शास्त्र, मनोवैज्ञानिक प्रयोगों और कालजैविकी जैसे विषम स्रोतों को एक साथ देखता है, इसलिए पारंपरिक मेटा-विश्लेषण संभव नहीं है। अतः "संरचित वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक समीक्षा" (scoping-type review) अपनाई गई, जिसकी रिपोर्टिंग PRISMA 2020 [8] तथा उसके scoping-विस्तार PRISMA-ScR [9] के अभिप्राय का अनुसरण करती है। स्रोतों के चयन में पहचान, छँटाई, पात्रता और समावेशन के चारों चरण रखे गए, ताकि पाठक देख सके कि कौन-सा स्रोत किस आधार पर लिया गया। संरचित समीक्षा-पद्धतियों की पारदर्शिता और उनके अनुप्रयोग पर भारतीय संदर्भ में पहले ही कार्य हो चुके हैं।

3.2 पात्रता-मानदंड

- **समावेशन:** (क) 31 दिसंबर 2024 तक प्रकाशित स्रोत; (ख) सहकर्मी-समीक्षित शोध, समीक्षा-लेख, मानक वैज्ञानिक ग्रंथ या शास्त्रीय पाठों के आलोचनात्मक संस्करण/अनुवाद; (ग) चार शोध-प्रश्नों में से कम-से-कम एक से प्रत्यक्ष संबंध।
- **बहिष्करण:** (क) 2024 या उसके बाद के प्रकाशन; (ख) प्रकाशन-वर्ष-विहीन (n.d.) सामग्री; (ग) विज्ञापन-धर्मी या असत्यापित लोकप्रिय ज्योतिष-साहित्य; (घ) विषय से असंबद्ध अध्ययन।

3.3 स्रोत-चयन की प्रक्रिया एवं पारदर्शिता-कथना लेखक को जो संदर्भ-सूची उपलब्ध कराई गई, उसमें कुल 117 प्रविष्टियाँ थीं। पात्रता-मानदंड (ख) और समय-सीमा लगाने पर उनमें से 100 प्रविष्टियाँ बाहर हो गईं और 17 शेष रहीं। इन 17 में से 15 को विषय-प्रासंगिकता के आधार पर रखा गया (संस्कार-संस्कृति के समाजशास्त्र, शोध-नैतिकता, मौलिकता-जाँच, नैतिक-शैक्षिक चिंतन और संस्थागत गुणवत्ता-मूल्यांकन से संबंधित), जबकि दो को अप्रासंगिक मानकर छोड़ा गया। ज्योतिष, खगोल-इतिहास, परीक्षण-मनोविज्ञान और कालजैविकी के स्रोत अलग से एक *लक्षित (purposive)* खोज द्वारा चुने गए। इस लक्षित खोज में किसी डेटाबेस-व्यापी "प्राप्त/छूटें गए" रिकॉर्डों की संख्या नहीं गढ़ी गई है; ईमानदार रिपोर्टिंग का तकाजा है कि केवल वही संख्याएँ दी जाएँ जो वास्तव में गिनी गई हों। अंतिम समावेशित स्रोत-कोष की कुल संख्या $N = 66$ है, जिसका वर्गीकरण इस प्रकार है: शास्त्रीय पाठ एवं उनके आलोचनात्मक अनुवाद 12; खगोल-इतिहास एवं पंचांग-अध्ययन 15; प्रायोगिक परीक्षण, विज्ञान-दर्शन एवं मनोविज्ञान 13; कालजैविकी एवं चंद्र-प्रभाव 9; समाजशास्त्र, नैतिकता एवं उच्च-शिक्षा-संदर्भ 13; पद्धति-संबंधी 4।

3.4 साक्ष्य-गुणवत्ता का त्रिस्तरीय आकलन स्रोतों के साक्ष्य-मूल्य को समान तराजू पर तौलना भ्रामक होता, इसलिए तीन स्तर तय किए गए। *स्तर-I (सशक्त):* द्वि-अंध परीक्षण, मेटा-विश्लेषण, नियंत्रित प्रयोगशाला-अध्ययन। *स्तर-II (मध्यम):* प्रेक्षणात्मक अध्ययन, व्यवस्थित समीक्षाएँ, सैद्धांतिक मॉडल। *स्तर-III (पाठ-ऐतिहासिक):* शास्त्रीय ग्रंथ और उनकी आलोचनात्मक व्याख्याएँ, जो प्रमाण नहीं बल्कि "दावे का स्रोत" हैं। शिक्षा-क्षेत्र में परिणाम-आधारित और साक्ष्य-आधारित मूल्यांकन की जो चर्चा उच्च शिक्षा में

मान्यता-प्रक्रियाओं के संदर्भ में विकसित हुई है [10-12], वही तर्क यहाँ पाठ्य-सामग्री पर भी लागू किया गया है: किसी दावे का मूल्यांकन उसके घोषित परिणाम से किया जाए, उसकी प्रतिष्ठा से नहीं।

3.5 विश्लेषण-ढाँचा। प्रत्येक स्रोत से चार तत्त्व निकाले गए: (i) मूल दावा; (ii) प्रमाण का प्रकार; (iii) परिणाम; (iv) सीमाएँ। फिर इन्हें दार्शनिक, खगोलीय, कालजैविक और मनोसामाजिक — चार विषयगत समूहों में रखकर तुलनात्मक संश्लेषण किया गया।

3.6 नैतिक एवं मौलिकता-कथन। समाज-विज्ञान शोध की नैतिकता — पारदर्शिता, उद्धरण-निष्ठा और निष्पक्षता — के मानकों का पालन किया गया है [13]। पाठ मूल विश्लेषण पर आधारित है और उद्धृत विचार स्रोत-संख्या सहित दर्शाए गए हैं; साहित्यिक चोरी की पहचान-विधियों और उपकरणों पर उपलब्ध मार्गदर्शन [14] के अनुरूप, प्रकाशन से पूर्व किसी मान्य समानता-जाँच उपकरण से अंतिम परीक्षण की अनुशंसा की जाती है।

4. काल-विभाजन की दार्शनिक नींव

4.1 काल: देवता, शक्ति और मापन। भारतीय चिंतन में काल केवल घड़ी का आँकड़ा नहीं, बल्कि एक सत्ता-बोध भी है। अथर्ववेद का काल-सूक्त काल को सात रश्मियों वाले अश्व के रूप में चित्रित करता है [15]:

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।

गीता में कृष्ण स्वयं को "कालः कलयतामहम्" (10.30) कहते हैं, अर्थात् गणना करने वालों में मैं काल हूँ, और ग्यारहवें अध्याय में काल का विराट, संहारक रूप प्रकट होता है: "कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः" (11.32) [16]। यहाँ काल एक साथ मापन का साधन और अस्तित्व का नियामक है। यही द्वैत भारतीय ज्योतिष की पूरी बनावट में दिखता है: काल गणित की इकाई भी है और कर्म-फल की भूमि भी।

4.2 मूर्त और अमूर्त काल। सूर्यसिद्धांत काल के दो रूप निर्धारित करता है। यह वर्गीकरण दार्शनिक रूप से अत्यंत सूक्ष्म है [17]:

लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः।

स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्तश्चामूर्त उच्यते॥

एक काल वह है जो लोकों का अंत करता है (अमूर्त, अनंत प्रवाह), और दूसरा वह जो गणना-योग्य है (मूर्त)। अगले श्लोक में प्राण से लेकर नाड़िका तक की मापन-शृंखला दी गई है: छह प्राण का एक विनाड़ी और साठ विनाड़ी की एक नाड़िका (घटी) [17]। इस प्रकार भारतीय परंपरा ने आरंभ में ही अपरिमेय काल और परिमेय काल का भेद कर दिया था। ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से यह भेद आगे चलकर निर्णायक बनता है, क्योंकि गणनात्मक काल का सत्यापन खगोल-प्रेक्षण से हो सकता है, जबकि "अमूर्त काल" के आध्यात्मिक अर्थ प्रेक्षण की परिधि से बाहर रहते हैं।

4.3 सूक्ष्म से विराट तक: विभाजन की गणितीय संरचना। मनुस्मृति (1.64) में दैनिक काल की शृंखला इस प्रकार दी गई है [18]:

निमेषा दश चाष्टौ च काष्ठा त्रिंशत् ताः कलाः।

त्रिंशत्कला मुहूर्तः स्यादहोरात्रं तु तावतः॥

अर्थात् 18 निमेष की एक काष्ठा, 30 काष्ठा की एक कला, 30 कला का एक मुहूर्त और 30 मुहूर्त का एक अहोरात्र। इस गणना को आधुनिक इकाइयों में बदलने पर एक अहोरात्र 86,400 सेकंड का है, अतः एक मुहूर्त 2,880 सेकंड यानी ठीक 48 मिनट बैठता है; एक कला 96 सेकंड और एक निमेष लगभग 0.178 सेकंड का। यह मान मानवीय पलक-झपकने के समय के क्रम का है, जो बताता है कि विभाजन-पद्धति शरीर-अनुभव से जुड़ी इकाई से आरंभ होती है। सूर्यसिद्धांत की पद्धति में एक नाड़िका (घटी) 24 मिनट की और एक विनाड़ी 24 सेकंड की है, तथा 60 घटी का दिन-रात बनता है [17]। दोनों पद्धतियाँ परस्पर संगत हैं, क्योंकि एक मुहूर्त ठीक दो घटी के बराबर है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय काल-विभाजन ऐच्छिक नहीं, गणितीय रूप से सुसंगत है: षष्ठिक (60) और त्रिंशत्-आधारित (30) श्रृंखलाएँ एक-दूसरे में पूर्ण-भाजित होती हैं।

4.4 दिन के भीतर काल-विभाजन: मुहूर्त-श्रृंखला। पारंपरिक मान्यता में दिन के पंद्रह और रात्रि के पंद्रह मुहूर्त गिने जाते हैं। दिन के आठवें मुहूर्त को अभिजित् कहा जाता है, जो स्थानीय मध्याह्न के आसपास पड़ता है। इस पर ध्यान देना आवश्यक है कि जब दिनमान 12 घंटे से भिन्न होता है, तब मुहूर्त की अवधि भी 48 मिनट से बदल जाती है, क्योंकि दिन के मुहूर्त दिनमान के पंद्रहवें भाग के रूप में निकाले जाते हैं। यह परंपरा की एक सूक्ष्म गणितीय विशेषता है, जिसे प्रायः लोकप्रिय चर्चा में नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है।

4.5 कल्प-काल: विराट विभाजना। लघुतम इकाई के साथ-साथ परंपरा विराट इकाइयों की भी कल्पना करती है: युग, मन्वन्तर और कल्प, जिनकी लंबाई अरबों वर्षों तक जाती है। आर्यभटीय और सूर्यसिद्धांत में ग्रहों के भगणों की संख्या एक महायुग की अवधि के भीतर निर्धारित की गई है [17,19]। इतिहासकारों का मत है कि ये विराट संख्याएँ गणना की सुविधा के लिए चुनी गई ऐसी "पूर्ण-भगण" पद्धतियाँ थीं जिनसे ग्रह-स्थिति का अंकगणितीय निर्धारण पूर्णांकों में किया जा सके [20,21]। इन अंकों को विशुद्ध पौराणिक कथा कहना भी उतना ही भ्रामक है जितना उन्हें प्रेक्षित भूवैज्ञानिक तथ्य मान लेना; वे गणितीय सुविधा और कालबोध के दार्शनिक विस्तार का मिश्रण हैं।

4.5.1 वैदिक पूर्व-पीठिका। खगोल-इतिहास की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है कि वैदिक यज्ञ-वेदियों की ज्यामिति में ही कैलेंडर-संबंधी संख्याएँ निहित मानी गई हैं; इस प्रस्ताव के अनुसार वेदियों के आकार और ईंटों की संख्या वर्ष और चंद्र-मास की अवधियों के निकट संख्याओं को स्थानांतरित करती हैं [22,23]। यह व्याख्या अब भी विवादित है और इसे वेदाङ्ग-काल के लिखित प्रमाणों से अलग रखकर देखना चाहिए, परंतु यह संकेत अवश्य देती है कि काल-गणना भारत में अनुष्ठान-व्यवस्था से अलग-थलग नहीं, उसके भीतर जन्मी थी [24]।

4.6 कर्म, दैव और पुरुषार्थ: मुहूर्त का दार्शनिक द्वंद्व। यदि समय शुभ-अशुभ हो सकता है, तो मनुष्य की स्वतंत्र कर्म-शक्ति का क्या स्थान है? भारतीय दर्शन ने इस प्रश्न को टाला नहीं। गीता (18.14) कर्म की सिद्धि के पाँच कारकों में अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा और अंत में "दैव" को गिनती है [16]:

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।

विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥

यहाँ दैव पाँच कारकों में केवल एक है, निर्णायक या एकमात्र नहीं। याज्ञवल्क्यस्मृति का आचाराध्याय इसे दृष्टांत से समझाता है [25]:

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।

एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति॥

जैसे एक पहिये से रथ नहीं चलता, वैसे पुरुषार्थ के बिना दैव सिद्ध नहीं होता। इन ग्रंथों के आधार पर कहा जा सकता है कि शास्त्र-सम्मत मुहूर्त-विचार का मूल ढाँचा *नियतिवादी नहीं* है; वह पुरुषार्थ के पूरक के रूप में काल-अनुकूलता खोजता है। गांधी-चिंतन में भी जीवन-मूल्यों, नैतिक अनुशासन और कर्मनिष्ठा पर जोर, समय के सदुपयोग की आधुनिक व्याख्या के निकट खड़ा दिखता है [26,27]। यहाँ ऐतिहासिक सावधानी आवश्यक है: परंपरा का यह उदार दार्शनिक आधार व्यवहार में प्रायः कठोर, निषेध-प्रधान नियमों में बदल गया, जिसकी चर्चा आगे की जाएगी।

5. पंचांग-व्यवस्था की खगोलीय यथार्थता: सत्यापन-योग्य परत

5.1 पाँच अंगों की संरचना। पंचांग का नाम ही उसके पाँच अंगों से बना है: "तिथिर्वाश्च नक्षत्रं योगः करणमेव च।" ये पाँचों अंग वास्तव में सूर्य और चंद्रमा की गतियों पर आधारित पाँच अलग-अलग गणितीय फलन हैं। तिथि चंद्र और सूर्य के देशांतरों के अंतर का प्रत्येक 12° का खंड है; 360° में 30 तिथियाँ बनती हैं। नक्षत्र चंद्रमा की नाक्षत्र स्थिति को 27 बराबर खंडों (प्रत्येक $13^\circ 20'$) में बाँटता है। योग सूर्य और चंद्र के देशांतरों के योग का $13^\circ 20'$ का खंड है, जबकि करण तिथि का आधा, यानी 6° का खंड। वार सात दिन के सतत चक्र का नाम है। इनकी रूपरेखा वेदाङ्ग ज्योतिष से लेकर सिद्धांत-ग्रंथों तक क्रमशः परिष्कृत होती दिखती है [1,2,17]। तालिका 1 इन इकाइयों और उनके सत्यापन-स्तर का संक्षेप प्रस्तुत करती है।

तालिका 1. पंचांग की इकाइयाँ, उनकी खगोलीय परिभाषा और सत्यापन-स्तर

इकाई	खगोलीय परिभाषा	औसत अवधि	वास्तविक परिवर्तन-सीमा (लगभग)	खगोलीय गणना का सत्यापन	शुभाशुभ फल-दावे का प्रायोगिक साक्ष्य
तिथि	(चंद्र – सूर्य) देशांतर का 12° खंड	23 घं 37 मि	19–27 घंटे	उच्च (आधुनिक एफ़ेमेरिस से मिलान योग्य)	उपलब्ध नहीं
वार	सात दिन का सतत चक्र	24 घंटे	स्थिर	उच्च (कैलेंडर-परंपरा)	उपलब्ध नहीं
नक्षत्र	चंद्र की नाक्षत्र स्थिति का $13^\circ 20'$ खंड	23 घं 12 मि	21–27 घंटे	उच्च (गणितीय); तारा-समूह की पहचान में परंपरा-भेद	उपलब्ध नहीं
योग	(सूर्य + चंद्र) देशांतर-योग का $13^\circ 20'$ खंड	22 घं 36 मि	परिवर्तनशील	उच्च (गणितीय)	उपलब्ध नहीं
करण	तिथि का आधा (6°)	11 घं 49 मि	9.5–13.5 घंटे	उच्च (गणितीय)	उपलब्ध नहीं

स्रोत: लेखक द्वारा संकलित; औसत मान चंद्र-मास की माध्य अवधि और सूर्य-चंद्र की औसत गति से निकाले गए हैं [21,28,29]। परिवर्तन-सीमाएँ चंद्र की असमान गति (दैनिक गति लगभग 11.8° से 15.4°) से उत्पन्न होती हैं।

तालिका में एक निर्णायक अंतर दिखता है: पाँचवाँ स्तंभ कहता है कि गणना सत्यापित हो सकती है, जबकि छठा स्तंभ बताता है कि उसपर आधारित शुभाशुभ दावों का कोई प्रायोगिक साक्ष्य नहीं मिला। यही अंतर इस पत्र की केंद्रीय स्थापना को आकार देता है।

5.2 सटीकता का आकलन। आधुनिक ग्रह-गतिकी में चंद्र और सूर्य की स्थितियाँ उच्च-परिशुद्धता वाले एफ़ेमेरिस से निकलती हैं [28,30]। इनसे मिलान करने पर सूर्यसिद्धांत में प्रयुक्त चंद्र-मास का मान लगभग 29.53059 दिन आता है, जो आधुनिक माध्य सिनोडिक मास से एक सेकंड से भी कम प्रति मास के अंतर पर बैठता है [17]। वहीं नाक्षत्र वर्ष का मान लगभग 365.2588 दिन है, जबकि आधुनिक मान लगभग 365.2564 दिन है; यानी सूर्यसिद्धांत का वर्ष लगभग साढ़े तीन मिनट लंबा है [17,20]। यह अंतर छोटा दिखता है, किंतु सैकड़ों वर्षों में संचित होकर तिथि और ग्रहण-समयों में भिन्नता ला देता है। इसी कारण सिद्धांत-आधारित (वाक्य या सूर्यसिद्धांतीय) पंचांग और आधुनिक प्रेक्षण-आधारित (दृक्) पंचांग कई बार भिन्न तिथि या नक्षत्र-अवधि दर्शाते हैं।

5.3 अयनांश और राशि-चक्र का प्रश्न। पृथ्वी की धुरी के पुरस्सरण (precession) के कारण वसंत-विषुव का बिंदु प्रति वर्ष लगभग 50.3 कला-सेकंड पश्चिम खिसकता है। भारतीय निरयन पद्धति तारों से स्थिर राशि-चक्र लेती है, जबकि पश्चिमी सायन पद्धति ऋतुओं से बँधा चक्र। दोनों के बीच का कोणीय अंतर "अयनांश" कहलाता है, जो आज लगभग 24° है [28,31]। लगभग प्रत्येक 72 वर्ष में यह एक अंश बढ़ता है। भारत में राष्ट्रीय स्तर पर अयनांश का मान तय करने के प्रयास 1950 के दशक की कैलेंडर सुधार समिति के काम से जुड़े हैं, जिसने तत्कालीन भारत में प्रचलित लगभग तीस विभिन्न पंचांगों की विसंगति को रेखांकित किया था [29,32]। एक ही दिन की तिथि या मुहूर्त पर विभिन्न पंचांगों का भिन्न होना केवल व्यावहारिक असुविधा नहीं, बल्कि विश्वसनीयता (reliability) की समस्या है: यदि दो गणक एक ही क्षण को "शुभ" और "अशुभ" कहें, तो फल-दावे की परीक्षणीयता पर प्रश्न उठता है।

5.4 तिथि-क्षय और तिथि-वृद्धि। तिथि की अवधि लगभग 19 से 27 घंटे तक बदलती है, जबकि सिविल दिन 24 घंटे का होता है। परिणामतः कभी एक तिथि दो सूर्योदयों को पार कर लेती है (वृद्धि) और कभी किसी सूर्योदय को छुए बिना बीत जाती है (क्षय)। यह घटना पंचांग की आंतरिक त्रुटि नहीं, बल्कि चंद्र-गति की प्राकृतिक अनियमितता का सही प्रतिबिंब है [21,29]। पर्व-निर्णय के पारंपरिक नियम इसी अनियमितता के प्रबंधन के लिए बने हैं। इस दृष्टि से पंचांग का "लचीलापन" एक वैज्ञानिक विशेषता है, किंतु वही लचीलापन मुहूर्त-नियमों की जटिलता का भी स्रोत बन जाता है।

5.5 ऐतिहासिक संदर्भ: स्वदेशी और बाह्य योगदान। यह कहना ऐतिहासिक रूप से अपूर्ण होगा कि भारतीय पंचांग पूर्णतः स्वदेशी विकास है। यवनजातक जैसे ग्रंथ और सात-दिन वाले सप्ताह की परंपरा से स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिष ने यूनानी-बेबीलोनी विचारों को अपनाकर उन्हें अपने गणितीय ढाँचे में पुनर्गठित किया [33,34]। दूसरी ओर, केरल की गणित-खगोल परंपरा ने चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी के बीच ग्रह-गति के मॉडल को संशोधित किया, जिनसे ग्रहों की गति का एक ऐसा चित्र निकलता है जिसमें ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं और सूर्य पृथ्वी की [35,36]। अर्थात् परंपरा स्थिर नहीं रही; प्रेक्षण और संशोधन उसके भीतर चलते रहे। इसलिए "सब कुछ वेदों में है" और "सब कुछ विदेशी उधार है" — दोनों कथन विश्लेषणात्मक रूप से कमजोर हैं।

5.6 सत्यापन की व्यावहारिक विधि। तिथि या नक्षत्र की गणना का स्वतंत्र सत्यापन एक सरल कलन-विधि से संभव है: किसी स्थान और काल के लिए सूर्य तथा चंद्र के देशांतर निकाले जाएँ [28], उनका अंतर (तिथि के लिए), योग (योग के लिए) या चंद्र की निरयन स्थिति (नक्षत्र के लिए) अयनांश-सुधार के साथ निकाली जाए, और फिर 12° , $13^\circ 20'$ या 6° के गुणजों पर संक्रमण-काल ढूँढ़ा जाए। इस प्राप्त समय की तुलना किसी प्रकाशित पंचांग के समय से करने पर विचलन मिनटों में मापा जा सकता है। इस विधि का महत्त्व इसमें है कि यह परंपरा के प्रति न श्रद्धा माँगती है, न संशय; वह केवल गणित और प्रेक्षण पर निर्भर है। साथ ही यह विधि अलग-अलग पंचांगों में भेद का स्रोत भी स्पष्ट कर देती है: अयनांश का चयन, स्थान का देशांतर-अक्षांश और सूर्योदय की परिभाषा

(उदय का बिंब-किनारा या केंद्र) छोटे-छोटे अंतर पैदा करते हैं, जो तिथि-परिवर्तन के निकट पड़ने वाले मुहूर्तों में निर्णायक सिद्ध हो सकते हैं।

6. मुहूर्त-विज्ञान: सिद्धांत, प्रक्रिया और अंतर्निहित मान्यताएँ

6.1 परिभाषा और उपयोग-क्षेत्र। "मुहूर्त" शब्द के दो अर्थ चलते हैं: (क) 48 मिनट की काल-इकाई, और (ख) किसी कार्य के आरंभ के लिए चुना गया शुभ क्षण। दूसरा अर्थ मुहूर्त-शास्त्र का विषय है, जिसके प्रमुख ग्रंथों में रामदैवज्ञ का मुहूर्तचिंतामणि और बृहत्संहिता तथा बृहत्पाराशरहोराशास्त्र के प्रासंगिक अंश गिने जाते हैं [37-39]। संस्कारों (विवाह, उपनयन, गृहप्रवेश) के अतिरिक्त यात्रा, कृषि-आरंभ, चिकित्सा और राज्याभिषेक तक इसका विस्तार मिलता है [24,38]।

6.2 निर्णय के घटक। मुहूर्त-निर्धारण एक बहु-चरण प्रक्रिया है जिसे सामान्यतः निम्न घटकों में समझा जा सकता है:

- **पंचांग-शुद्धि:** तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण की अनुकूलता; रिक्ता तिथियों और विष्टि (भद्रा) करण जैसी निषिद्ध अवधियों का वर्जन।
- **लग्न-शुद्धि:** उस क्षण पूर्वी क्षितिज पर उदित हो रही राशि और उसमें ग्रहों की स्थिति।
- **चंद्र-बल और तारा-बल:** यजमान की जन्म-राशि और जन्म-नक्षत्र के सापेक्ष चंद्र तथा नक्षत्र की अनुकूलता।
- **कालखंड-निषेध:** गुरु-शुक्र अस्त, अधिमास, पितृपक्ष, चातुर्मास जैसे दीर्घ निषेध-काल।
- **सूक्ष्म विभाजन:** अभिजित्, ब्राह्म मुहूर्त, चौघड़िया, राहुकाल जैसे दैनिक उपविभाग। इनमें राहुकाल जैसी व्यवस्थाएँ क्षेत्र-विशेष की परवर्ती परंपराएँ हैं और शास्त्रीय संहिताओं में उसी रूप में सार्वभौमिक नहीं मिलतीं।

यहाँ एक विश्लेषणात्मक अवलोकन आवश्यक है। मुहूर्त के घटकों की संख्या जितनी बढ़ती है, "पूर्ण शुद्ध" क्षण मिलने की संभावना उतनी घटती है। यदि मान लें कि पाँच स्वतंत्र शर्तें प्रत्येक 50% संभावना से पूरी होती हैं, तो सभी के एक साथ पूरी होने की संभावना $(0.5)^5 =$ लगभग 3.1% रह जाती है। व्यवहार में परंपरा "प्रधान" और "गौण" दोषों के बीच भेद, और दोषों के परिहार (निराकरण) के नियम बनाकर इसी समस्या का समाधान करती है। यह परिहार-व्यवस्था तार्किक रूप से इतनी लचीली है कि किसी भी चुने हुए क्षण को "पर्याप्त शुभ" ठहराया जा सकता है, जो मिथ्याकरणीयता की दृष्टि से एक गंभीर चुनौती है (खंड 7.1)।

6.3 ब्राह्म मुहूर्त: परंपरा की एक विशेष कसौटी। आयुर्वेद के दिनचर्या-विधान में सूर्योदय से पूर्व जागरण को स्वास्थ्य के लिए निर्दिष्ट किया गया है। अष्टांगहृदय का उपदेश है [40]:

ब्राह्म मुहूर्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।

पारंपरिक गणना में ब्राह्म मुहूर्त सूर्योदय से लगभग 96 मिनट (दो मुहूर्त) पहले आरंभ होकर एक मुहूर्त तक चलता है। यह उन दुर्लभ मुहूर्तों में है जिसका संबंध कर्मकांड की अपेक्षा स्वास्थ्य-व्यवहार से है, और जिसे कालजैविकी की कसौटी पर रखा जा सकता है (खंड 7.3)।

6.4 अनुष्ठान-परंपरा से व्यावसायिक सेवा तक। ऐतिहासिक रूप से मुहूर्त का आरंभ यज्ञ-काल-निर्धारण में हुआ, जहाँ कारण स्पष्ट था: वसंत में अग्निहोत्र या वर्ष-विशेष में सोम-यज्ञ तभी हो सकता था जब ऋतु-चक्र का सही बोध हो [1,24]। संस्कारों का बाद का विस्तार सामाजिक संस्था के रूप में हुआ, जहाँ काल-निर्धारण परिवार, समुदाय और पुरोहित के बीच समन्वय का साधन बन गया [3-5]। आधुनिक युग में मुहूर्त एक डिजिटल और व्यावसायिक सेवा का रूप ले चुका है: मोबाइल ऐप, ऑनलाइन पंचांग और

अलग-अलग "शुभ दिन" सूचियाँ। यह रूपांतरण व्याख्या के स्थान पर उपभोग को बढ़ाता है और स्रोत-परंपरा के गणितीय विवरण से उपयोगकर्ता की दूरी बढ़ा देता है।

7. वैज्ञानिक परीक्षण: विश्लेषणात्मक यथार्थ-उद्घाटन

7.1 पहली कसौटी: मिथ्याकरणीयता। विज्ञान-दर्शन में किसी कथन को वैज्ञानिक तब माना जाता है जब उसके साथ ऐसी स्थिति निर्दिष्ट हो जिसमें वह गलत सिद्ध हो सके [41]। ज्योतिष पर यही प्रश्न थैगार्ड ने उठाया: किसी विद्या की वैज्ञानिकता केवल उसकी वर्तमान असफलता से नहीं, बल्कि इस बात से भी तय होती है कि क्या वह अपनी विसंगतियों को सुलझाने का प्रयास करती है और क्या वैकल्पिक सिद्धांतों से तुलना में टिकती है [42]। मुहूर्त पर यह कसौटी लगाने के लिए पहले उसके कथनों को तीन वर्गों में बाँटना उपयोगी है:

1. *गणनात्मक कथन*: "आज द्वितीया तिथि 14:35 तक है।" यह पूर्णतः परीक्षण-योग्य है और खंड 5 में इसकी पुष्टि हुई।
2. *शर्तयुक्त फलात्मक कथन*: "इस तिथि-नक्षत्र में किया गया विवाह स्थायी होगा।" यह सैद्धांतिक रूप से परीक्षण-योग्य है, पर व्यवहार में अपरीक्षित।
3. *परिहार-युक्त कथन*: "यदि दोष हो, तो अमुक उपाय से उसका निवारण हो जाता है।" यह अकेला कथन अपने स्वरूप में अपरीक्षणीय है, क्योंकि कोई भी विफलता इसके द्वारा "अपर्याप्त परिहार" बताकर समझाई जा सकती है।

इस प्रकार मुहूर्त-शास्त्र का वैज्ञानिक चरित्र एकरूप नहीं है। इसका गणना-अंश विज्ञान-सम्मत है, फल-अंश परीक्षणीय किंतु अपरीक्षित है, और परिहार-अंश अपने वर्तमान रूप में मिथ्याकरणीयता की शर्त पूरी नहीं करता।

7.2 ज्योतिष के प्रत्यक्ष प्रायोगिक परीक्षण। यहाँ एक सावधानी महत्वपूर्ण है: उपलब्ध नियंत्रित परीक्षण मुख्यतः *जन्म-कुंडली-आधारित* दावों पर हुए हैं, मुहूर्त-विशिष्ट दावों पर नहीं। इसलिए नीचे के निष्कर्ष मुहूर्त पर अनुमानात्मक रूप से ही लागू होते हैं, यद्यपि दोनों शाखाएँ ग्रह-स्थिति और मानवीय परिणाम के बीच एक ही प्रकार का कारण-संबंध मानती हैं।

कार्लसन का द्वि-अंध परीक्षण, जो *Nature* में प्रकाशित हुआ, इस क्षेत्र का सर्वाधिक उद्धृत अध्ययन है। इसमें प्रतिष्ठित ज्योतिषियों को व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक प्रोफ़ाइल से उनकी जन्म-कुंडली मिलानी थी; उनका प्रदर्शन संयोग-स्तर से भिन्न नहीं निकला [43]। केली की समीक्षा ने ज्योतिष के कई दशकों के परीक्षणों को एक साथ देखा और निष्कर्ष निकाला कि अधिकांश सुव्यवस्थित अध्ययन ज्योतिषीय दावों का समर्थन नहीं करते [44]। डीन और केली ने इसी क्रम में "समय-जुड़वाँ" (एक ही क्षण के आसपास जन्मे व्यक्ति) जैसे अध्ययनों की समीक्षा करके पाया कि अपेक्षित समानताएँ नहीं दिखतीं [45]। गोक्लिन के "मंगल-प्रभाव" जैसे विवादित निष्कर्ष, जिन्हें कभी ज्योतिष के पक्ष में प्रस्तुत किया गया, स्वयं पद्धतिगत आपत्तियों से घिरे रहे और उनके ज्योतिषीय व्याख्यान को व्यापक स्वीकृति नहीं मिली [46]। भारत में जे. वी. नारळीकर ने भी वैज्ञानिक संस्थाओं की भूमिका और ज्योतिष के परीक्षण की आवश्यकता पर बल देते हुए प्रमाण-आधारित जाँच का समर्थन किया [47]।

इन अध्ययनों से निकला परिणाम "ज्योतिष की प्रत्येक शाखा गलत सिद्ध हुई" नहीं है; सटीक कथन यह है कि *अब तक के सुनियोजित, अंध-परीक्षणों में ज्योतिषीय पूर्वानुमान का कोई सुसंगत सकारात्मक प्रभाव नहीं मिला*, और मुहूर्त पर तो लगभग कोई समर्पित परीक्षण ही उपलब्ध नहीं है। "सबूत का अभाव" और "अभाव का सबूत" के बीच यह अंतर तार्किक रूप से महत्वपूर्ण है, और यह आगे के शोध की दिशा भी खोलता है।

7.3 चंद्र-चक्र, जैव-लय और काल का वास्तविक विज्ञान। यहाँ मुहूर्त के पक्ष में सबसे अधिक आकर्षक दिखने वाला साक्ष्य मिलता है, पर उसकी व्याख्या में सावधानी चाहिए। कालजैविकी की समीक्षा बताती है कि मानव शरीर दैनिक, वार्षिक और (कुछ हद तक) चंद्र-आवर्तों से जुड़ी लयों का पालन करता है, किंतु चंद्र-चक्र का प्रभाव मुख्यतः समुद्री जीवों में सुस्थापित है और मनुष्यों में सीमित एवं परिवर्तनशील है [48,49]। केजोचेन और सहकर्मियों की प्रयोगशाला-आधारित जाँच में ($n = 33$) पूर्णिमा के निकट गहरी नींद की मस्तिष्क-तरंग गतिविधि में लगभग 30% की कमी, सोने में लगभग 5 मिनट अधिक समय, कुल नींद में लगभग 20 मिनट की कमी और मेलैटोनिन-स्तर में कमी दर्ज हुई [50]। यह निष्कर्ष महत्वपूर्ण है, पर इसका दायरा सीमित है: यह नींद-संरचना पर छोटे प्रभाव का प्रमाण है, विवाह, व्यापार या गृह-प्रवेश की सफलता पर प्रभाव का नहीं।

इसके विपरीत, चंद्र-चरण और पागलपन, अपराध या आपातकालीन घटनाओं के संबंध वाली लोकप्रिय धारणाओं की जाँच करने वाले मेटा-विश्लेषण में कोई विश्वसनीय संबंध नहीं मिला [51]। आत्महत्या और चंद्र-चरण के संबंध पर हुए एक अध्ययन में भी चंद्र-प्रभाव का कोई समर्थन नहीं मिला [52]। अतः चंद्र-आधारित तिथि-व्यवस्था के लिए प्रयोगशाला का "नींद वाला" साक्ष्य उपलब्ध है, पर "व्यवहार या भाग्य वाला" साक्ष्य नहीं।

दैनिक लय का प्रश्न ब्राह्म मुहूर्त के संदर्भ में और भी रोचक है। मानव-क्रोनोटॉप पर हुए बड़े अध्ययन दिखाते हैं कि जागरण-निद्रा के समय की प्राथमिकता जनसंख्या में सतत वितरण में फैली होती है; कुछ लोग स्वभावतः प्रातःकालीन (lark) और अन्य रात्रिकालीन (owl) होते हैं [53]। जब सामाजिक समय-सारिणी इस जैविक समय से मेल नहीं खाती, तो "सामाजिक जेट-लैग" उत्पन्न होता है, जो स्वास्थ्य-जोखिमों से जुड़ा पाया गया है [54]। इसका अर्थ यह है कि ब्राह्म मुहूर्त में उठना कई लोगों के लिए लाभदायक आदर्श हो सकता है, पर सार्वभौमिक नियम के रूप में उसे थोपने का वैज्ञानिक आधार कमजोर है। वास्तव में सर्कैडियन घड़ी स्वास्थ्य, संज्ञान और रोग-जोखिम को प्रभावित करती है [55,56], और इस दृष्टि से "समय का महत्त्व" वैज्ञानिक रूप से सत्य है, परंतु उसकी प्रकृति वैयक्तिक-जैविक है, सार्वभौमिक-खगोलीय नहीं। यह अंतर दो शब्दों में कहा जा सकता है: जैव-समय वैयक्तिक है, पंचांग-समय सार्वजनिक।

7.4 संज्ञानात्मक पूर्वाग्रह: विश्वास टिके क्यों रहते हैं? जब सीधा साक्ष्य कमजोर हो और विश्वास फिर भी मज़बूत, तब मनोविज्ञान की ओर देखना पड़ता है। फ़ोरर के क्लासिक प्रयोग में विद्यार्थियों को एक ही, अस्पष्ट और सामान्य व्यक्तित्व-विवरण दिया गया, जिसे प्रत्येक ने अपने लिए "व्यक्तिगत" मानकर औसतन लगभग 4.26/5 की सटीकता-रेटिंग दी [57]। यह "सत्यापन-भ्रम" बताता है कि अस्पष्ट फलानिर्देश अपने आप में विश्वसनीय लगते हैं। मुहूर्त के संदर्भ में तीन प्रक्रियाएँ विशेष रूप से सक्रिय रहती हैं:

- **पुष्टि-पूर्वाग्रह:** शुभ मुहूर्त वाली सफलताएँ याद रहती हैं; असफलताओं की व्याख्या "परिहार की कमी" या "प्रारब्ध" से हो जाती है।
- **उत्तरजीविता-पूर्वाग्रह:** विफल आरंभ की कहानियाँ कम सुनाई जाती हैं, जबकि सफल आरंभ बार-बार।
- **पश्च-दृष्टि पूर्वाग्रह:** परिणाम ज्ञात होने के बाद मुहूर्त "सही" या "गलत" पढ़ा जाता है।

7.5 एक मौलिक विश्लेषण: संख्याएँ क्या कहती हैं। मान लें कि किसी परिणाम (जैसे नए व्यवसाय का पाँच वर्ष में बंद हो जाना) की आधार-दर 10% है और शोधकर्ता यह जाँचना चाहता है कि "शास्त्रोक्त शुभ मुहूर्त" वाले समूह में यह दर 15% तक जाती या 5 प्रतिशत-बिंदु घटती है। 5% सार्थकता-स्तर और 80% शक्ति के साथ द्वि-नमूना अनुपात-परीक्षण के सामान्य सूत्र से प्रत्येक समूह में लगभग 686 प्रेक्षण चाहिए; यदि अंतर केवल 2 प्रतिशत-बिंदु (10% बनाम 12%) हो, तो प्रति समूह लगभग 3,840 प्रेक्षण। ये संख्याएँ दर्शाती हैं कि सुनिश्चित जाँच कोई अप्राप्य कार्य नहीं है; भारत में विवाह-पंजीकरण या कंपनी-पंजीयन जैसे प्रशासनिक

आँकड़े, यदि उन्हें पंचांग-वर्गीकरण के साथ जोड़ा जाए, तो ऐसे प्राकृतिक-प्रयोग (natural experiment) का आधार बन सकते हैं। यह प्रस्ताव लेखक का है और इसका परीक्षण होना शेष है।

एक और बात ध्यान देने योग्य है: ऐसी जाँच में पंचांग-वर्गीकरण का कार्य मुहूर्त-गणक को परिणाम बताए बिना, पूर्व-निर्धारित नियमों से होना चाहिए, और परिकल्पनाएँ परिणाम देखने से पहले पंजीकृत होनी चाहिए। तभी परिहार-नियमों द्वारा परिणाम को "व्याख्या के सहारे बचा लेने" की संभावना रहेगी।

7.6 जहाँ समय वास्तव में मायने रखता है: तुलनात्मक आधुनिक आँकड़े। आधुनिक चिकित्सा और समाज-विज्ञान में भी "समय के प्रभाव" के अनेक प्रमाण हैं, पर उनमें तंत्र (mechanism) पहचाना हुआ है। उदाहरण के लिए, अस्पताल में सप्ताहांत में भर्ती हुए रोगियों में मृत्यु-दर सामान्य दिनों की अपेक्षा अधिक पाई गई, जिसके पीछे कर्मचारी-उपलब्धता और सेवा-स्तर जैसे कारक माने जाते हैं [58]। एक चर्चित अध्ययन में यह भी दिखाया गया कि न्यायिक निर्णयों में भोजन-अवकाश से पहले और बाद में अनुकूल निर्णयों का अनुपात बदलता है, यद्यपि बाद में इसकी व्याख्या पर भी विवाद उठा [59]। इन उदाहरणों का सबक दोहरा है: (क) "कब" का प्रश्न वास्तविक हो सकता है; (ख) पर तभी वैज्ञानिक रूप से स्वीकार्य होता है जब प्रभाव मापा जाए और तंत्र नामित हो। मुहूर्त की चुनौती ठीक यही है कि वह अपना तंत्र (ग्रह-स्थिति से भाग्य तक का कारण-पथ) नामित नहीं कर पाया है।

8. तुलनात्मक दृष्टि: अन्य परंपराओं में "उचित क्षण" की खोज

मुहूर्त-विचार भारत का एकाकी आविष्कार नहीं, बल्कि विश्व-इतिहास में बार-बार उभरने वाली प्रवृत्ति है। मेसोपोटामिया की परंपरा में शुभ-अशुभ दिनों की सूचियाँ (hemerologies) और खगोलीय शकुन-संग्रह मिलते हैं, जिनसे आगे चलकर व्यक्तिगत ज्योतिष का विकास हुआ [34]। यूनानी-रोमन जगत में किसी कार्य के आरंभ का क्षण चुनने वाली शाखा (katarchē) विकसित हुई, और इसी परंपरा का भारतीय संपर्क यवनजातक जैसे ग्रंथों में दिखता है [33,34]। चीनी परंपरा में दिन-चयन से जुड़ी पंचांग-पद्धतियाँ भी प्राचीन खगोल-गणना के साथ विकसित हुईं, जिनका सामान्य परिचय खगोल-पुरातत्त्व के अध्ययनों में मिलता है [31]।

इन तुलनाओं से तीन निष्कर्ष निकलते हैं। पहला, "शुभ क्षण" की खोज एक सार्वभौमिक मानवीय प्रवृत्ति है, जो अनिश्चितता के सामने नियंत्रण की भावना देती है। दूसरा, भारतीय परंपरा की विशेषता उसकी गणितीय परिशुद्धता और संस्कार-व्यवस्था से उसका गहरा एकीकरण है, जो अन्य परंपराओं की तुलना में उसे सामाजिक रूप से अधिक संस्थागत बनाता है [3,5,24]। तीसरा, कोई भी परंपरा मुहूर्त-स्तर के फल-दावों के लिए प्रायोगिक पुष्टि प्रस्तुत नहीं कर सकती; यानी समस्या भारतीय परंपरा की नहीं, बल्कि पूरे वर्ग की है। इस आधार पर मुहूर्त की आलोचना को "भारतीय विज्ञान की आलोचना" समझना भी भूल होगी, और उसके बचाव में "प्राचीन-विज्ञान का गौरव" दोहराना भी अपर्याप्त है।

9. संबंधित शोध-समीक्षाएँ, उनके परिणाम और विविध दृष्टिकोण

9.1 समीक्षित अध्ययनों का संश्लेषण। तालिका 2 इस पत्र में विश्लेषित प्रमुख अध्ययनों को उनके डिज़ाइन, परिणाम, साक्ष्य-स्तर और मुहूर्त-विचार के लिए निहितार्थ के साथ प्रस्तुत करती है। साक्ष्य-स्तर वही हैं जो खंड 3.4 में परिभाषित किए गए थे।

तालिका 2. प्रमुख संबंधित शोध-समीक्षाएँ: परिणाम एवं निहितार्थ

क्र.	अध्ययन	डिज़ाइन	मुख्य परिणाम	साक्ष्य-स्तर	मुहूर्त-विचार के लिए निहितार्थ
1	कार्लसन (1985) [43]	द्वि-अंध मिलान-परीक्षण	ज्योतिषियों का प्रदर्शन संयोग-स्तर के निकट	I	कुंडली-आधारित सटीकता का समर्थन नहीं; मुहूर्त-विशिष्ट नहीं
2	केली (1997) [44]	आलोचनात्मक समीक्षा	अधिकांश सुनियोजित परीक्षणों में ज्योतिषीय दावे अप्रमाणित	II	सामान्य दावों पर संशयात्मक निष्कर्ष
3	डीन व केली (2003) [45]	समय-जुड़वाँ आदि की समीक्षा	अपेक्षित समानताएँ अनुपस्थित	II	एक ही क्षण के प्रभाव की धारणा पर प्रश्न
4	रॉटन व केली (1985) [51]	मेटा-विश्लेषण	चंद्र-चरण और व्यवहार में कोई सुसंगत संबंध नहीं	I	चंद्र-चरण से भाग्य या व्यवहार का दावा असमर्थित
5	केजोचेन आदि (2013) [50]	प्रयोगशाला नींद-अध्ययन, n = 33	पूर्णमा के निकट गहरी नींद लगभग 30% कम, कुल नींद लगभग 20 मिनट कम	I	चंद्र-चक्र का सूक्ष्म जैविक प्रभाव संभव; घटना-फल से संबंध सिद्ध नहीं
6	फ्रोस्टर व रोएनेबर्ग (2008) [48]	समीक्षा	चंद्र-आवर्त का प्रभाव समुद्री जीवों में सुस्थापित, मनुष्यों में सीमित	II	चंद्र-आधारित पंचांग के लिए सीमित जैविक आधार
7	रोएनेबर्ग आदि (2003) [53]	क्रोनोटाइप सर्वेक्षण	जागरण-समय की प्राथमिकता सतत रूप से भिन्न	II	ब्राह्म मुहूर्त का सार्वभौमिक आदेश जैविक रूप से अपर्याप्त
8	ब्रुक्स आदि (2016) [60]	प्रायोगिक अध्ययन-शृंखला	अनुष्ठान चिंता घटाते हैं और प्रदर्शन सुधारते हैं	I	मुहूर्त-अनुष्ठान का मनोवैज्ञानिक लाभ संभव
9	डैमिश आदि (2010) [61]	प्रायोगिक	"शुभ वस्तु" की उपस्थिति से स्व-प्रभावकारिता और प्रदर्शन में वृद्धि	I	विश्वास-जनित प्रदर्शन-सुधार का तंत्र
10	फ़ोर (1949) [57]	कक्षा-प्रयोग	सामान्य विवरण को औसतन 4.26/5 पर "व्यक्तिगत" माना गया	I	अस्पष्ट फलादेश की स्वीकार्यता का मनोवैज्ञानिक कारण
11	कक (1993) [22]	खगोल-ऐतिहासिक विश्लेषण	वैदिक वेदियों में कैलेंडर-संख्याओं का प्रस्ताव	II-III	काल-गणना की अनुष्ठान-जड़ों का सैद्धांतिक संकेत (विवादित)

12	रामसुब्रमण्यन आदि (1994) [35]	गणित-ऐतिहासिक विश्लेषण	केरल-खगोलविदों द्वारा ग्रह-गति के सिद्धांत में संशोधन	II-III	परंपरा के भीतर प्रेक्षण-आधारित सुधार का प्रमाण
13	कैलेंडर सुधार समिति (1955) [32]	समिति-प्रतिवेदन	लगभग तीस भिन्न पंचांगों की विसंगति रेखांकित	II	पंचांग-आधारित मुहूर्त में अंतर-गणक विश्वसनीयता की समस्या

स्रोत: लेखक द्वारा संकलित तथा विश्लेषित। साक्ष्य-सूत्र: I = सशक्त (नियंत्रित प्रयोग/मेटा-विश्लेषण), II = मध्यम (समीक्षा/प्रेक्षण/मॉडल), III = पाठ-ऐतिहासिक।

तालिका से तीन पैटर्न स्पष्ट दिखते हैं। (1) स्तर-I साक्ष्य का बड़ा भाग उन दावों के विरुद्ध जाता है जो ग्रह-स्थिति से मानवीय परिणाम की भविष्यवाणी करते हैं (पंक्ति 1-4)। (2) जो साक्ष्य मुहूर्त-व्यवहार के पक्ष में जाता है, वह कारण-तंत्र बदल देता है। वह ग्रह-स्थिति के प्रभाव का नहीं, चंद्र की सूक्ष्म जैविक अनुक्रिया (पंक्ति 5) या विश्वास और अनुष्ठान के मनोवैज्ञानिक प्रभाव (पंक्ति 8-9) का साक्ष्य है। (3) ऐतिहासिक-खगोलीय अध्ययन (पंक्ति 11-13) परंपरा की गणितीय गंभीरता और स्व-सुधार प्रवृत्ति दिखाते हैं, पर फल-दावों के बारे में कुछ नहीं कहते।

9.2 बहु-दृष्टिकोणीय विश्लेषण। मुहूर्त के मूल्यांकन में कम-से-कम छह दृष्टिकोण सक्रिय हैं, और प्रत्येक की अपनी वैधता और सीमा है।

(क) **परंपरावादी-शास्त्रीय दृष्टि।** यह मानती है कि मुहूर्त शास्त्र-सिद्ध है और उसके नियम ऋषि-परंपरा से प्रमाणित हैं। इसकी शक्ति पाठ-निष्ठा और निरंतर परंपरा में है [1,37,39]। इसकी सीमा यह है कि पाठ की प्रामाणिकता, फल-दावे की अनुभवजन्य सत्यता का स्थान नहीं ले सकती। वेदाङ्ग-काल में काल-निर्धारण का तर्क स्पष्ट था; बाद की परतों में यह तर्क निषेध-सूचियों में रूपांतरित होता गया।

(ख) **खगोल-ऐतिहासिक दृष्टि।** यह पंचांग को भारतीय गणित-खगोल की उपलब्धि मानती है और उसकी परिशुद्धता तथा सुधार-इतिहास को रेखांकित करती है [20,21,62]। इसकी शक्ति सत्यापन-योग्य प्रमाणों में है; सीमा यह कि वह गणना की सटीकता को फलादेश की वैधता में बदल देने के प्रलोभन में पड़ सकती है।

(ग) **अनुभववादी-वैज्ञानिक दृष्टि।** यह दावों को नियंत्रित परीक्षण से जाँचती है [43-45]। इसकी शक्ति कठोरता है; सीमा यह कि मुहूर्त-विशिष्ट अध्ययन लगभग अनुपस्थित हैं, इसलिए कई निष्कर्ष अनुमानजन्य हैं।

(घ) **कालजैविक दृष्टि।** यह "सही समय" को जैविक लय के रूप में मापती है [48,55]। इसकी शक्ति तंत्र की पहचान है; सीमा यह कि वह वैयक्तिक लय की बात करती है, सार्वजनिक पंचांग की नहीं।

(ङ) **समाजशास्त्रीय-मनोवैज्ञानिक दृष्टि।** यह मुहूर्त को समन्वय, अनुष्ठान और अर्थ-निर्माण की सामाजिक प्रक्रिया के रूप में देखती है [4,5,60,61]। इसकी शक्ति व्याख्यात्मक गहराई है; सीमा यह कि "यह उपयोगी है" से "यह सत्य है" का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

(च) **नैतिक-विधिक दृष्टि।** यह प्रश्न उठाती है कि क्या मुहूर्त-निर्भरता कभी हानिकारक हो सकती है — जैसे आपातकालीन चिकित्सा में विलंब, कमज़ोर वर्गों पर आर्थिक बोझ, या ज्योतिषी द्वारा अप्रमाणित सटीकता का दावा। शोध-नैतिकता का मूल सिद्धांत —

दावे को उसके साक्ष्य से अधिक न खींचना — यहाँ भी लागू होता है [13]। जीवन-मूल्यों पर आधारित गांधीवादी चिंतन इसी विवेकपूर्ण संतुलन की ओर संकेत करता है [26]।

10. विमर्श: संश्लेषण और प्रस्तावित त्रिस्तरीय सत्यापन-प्रतिमान

10.1 केंद्रीय निष्कर्ष। तीनों कार्य-परिकल्पनाओं की स्थिति इस प्रकार है। H1 (पंचांग की खगोलीय सत्यता) *समर्थित* है: तिथि, नक्षत्र, योग और करण की परिभाषाएँ आधुनिक खगोल-विज्ञान से मेल खाती हैं, और गणितीय सुसंगति उल्लेखनीय है। H2 (फल-दावे का साक्ष्य नहीं) *वर्तमान साक्ष्य के सीमित दायरे में समर्थित* है, इस चेतावनी के साथ कि मुहूर्त-विशिष्ट परीक्षण उपलब्ध नहीं हैं और निष्कर्ष कुंडली-आधारित परीक्षणों से अनुमानित हैं। H3 (सामाजिक भूमिका की मनोसामाजिक व्याख्या) *आंशिक रूप से समर्थित* है; यह तंत्र संभव और प्रायोगिक रूप से आधारित है, पर भारतीय संदर्भ में मुहूर्त पर इसका प्रत्यक्ष परीक्षण नहीं हुआ।

10.2 त्रिस्तरीय सत्यापन-प्रतिमान (Three-Tier Verification Model, TVM)। इस विश्लेषण के आधार पर लेखक एक संकल्पनात्मक प्रतिमान प्रस्तावित करता है, जो मुहूर्त के पूरे दावे-समूह को एक ही पलड़े में तौलने की भूल से बचाता है।

- **स्तर 1 — गणनात्मक सत्य (Computational Tier):** पंचांग-इकाइयों की खगोलीय गणना। सत्यापन-विधि: एफ़ेमेरिस से मिलान। वर्तमान स्थिति: सत्यापित।
- **स्तर 2 — कार्यात्मक सत्य (Functional Tier):** मुहूर्त का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कार्य: समन्वय, अनुष्ठान-जनित चिंता-न्यूनता, समय-अनुशासन और अर्थ-निर्माण। सत्यापन-विधि: सामाजिक-मनोवैज्ञानिक प्रयोग, सर्वेक्षण, नृवंशविज्ञानीय अध्ययन। वर्तमान स्थिति: आंशिक रूप से समर्थित (सामान्य अनुष्ठान-साक्ष्य के आधार पर)।
- **स्तर 3 — पूर्वानुमानात्मक सत्य (Predictive Tier):** शुभाशुभ क्षण से परिणामों का कारणात्मक संबंध। सत्यापन-विधि: पूर्व-पंजीकृत, अंध-वर्गीकृत प्राकृतिक प्रयोग। वर्तमान स्थिति: असत्यापित।

इस प्रतिमान का मुख्य तर्क यह है कि तीनों स्तरों पर सफलता या असफलता एक-दूसरे को न बचाती है, न गिराती है। स्तर 1 की सटीकता स्तर 3 को वैधता नहीं देती, और स्तर 3 की अप्रमाणितता स्तर 1 की उपलब्धि को नहीं मिटाती। यही स्थिति "विश्लेषणात्मक यथार्थ-उद्घाटन" का सार है।

10.3 मुहूर्त का समन्वय-सिद्धांत (फ़ोकल-बिंदु परिकल्पना)। स्तर 2 की व्याख्या के लिए लेखक एक विचार प्रस्तावित करता है जिसे परीक्षण के लिए खुला रखा गया है। शेलिंग की खेल-सिद्धांत संकल्पना के अनुसार, जब अनेक लोगों को बिना संवाद के या कम संवाद से एक ही विकल्प पर पहुँचना हो, तब कोई *उभरा हुआ, साझा संकेत* (focal point) समन्वय का काम करता है, चाहे उस संकेत का अपने-आप में कोई कारणात्मक मूल्य न हो [63]। यदि हम विवाह या गृह-प्रवेश जैसे आयोजनों को देखें, जहाँ रिश्तेदार, पुरोहित, भवन और भोजन-व्यवस्था सब एक साथ जुड़ते हैं, तो पंचांग-प्रदत्त "शुभ तिथि" ठीक इसी तरह का साझा संकेत बन जाती है। इस दृष्टि से मुहूर्त की सामाजिक उपयोगिता उसकी फल-शक्ति से स्वतंत्र रूप से भी समझी जा सकती है। संस्कार-संस्थाओं के समाजशास्त्रीय अध्ययन भी बताते हैं कि अनुष्ठान-काल सामाजिक एकजुटता का वाहक है [3-5]।

इसी परिकल्पना का एक अप्रिय परिणाम भी है, जो परीक्षण के योग्य है: जब सैकड़ों-हजारों परिवार एक ही सीमित "लग्न-तिथि" पर केंद्रित हो जाते हैं, तो माँग-संकेंद्रण से मूल्य-वृद्धि, भीड़ और संसाधन-दबाव पैदा हो सकता है। यानी समन्वय-लाभ और संकेंद्रण-हानि एक ही सिक्के के दो पहलू हो सकते हैं। यह अनुमान आर्थिक आँकड़ों से जाँचा जा सकता है।

10.4 अनुष्ठान और विश्वास का मनोविज्ञान। यदि मुहूर्त का भौतिक प्रभाव सिद्ध नहीं है, तो भी उसका अनुभव-जन्य प्रभाव वास्तविक हो सकता है। प्रयोगों में पाया गया कि अनुष्ठान-व्यवहार चिंता घटाकर प्रदर्शन सुधार सकते हैं [60], और "शुभ वस्तु" जैसी अंधविश्वास-जनित सहायता स्व-प्रभावकारिता बढ़ाकर कार्य-प्रदर्शन में वृद्धि कर सकती है; एक प्रयोग में लगभग 4.75 के स्थान पर लगभग 6.42 (10 में से) सफल प्रयासों जैसा अंतर दर्ज किया गया [61]। इस आधार पर कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति अपने आयोजन को "शुभ क्षण" में आरंभ करने में विश्वास रखता है, वह कम चिंतित और अधिक आत्मविश्वासी महसूस कर सकता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि यह लाभ ग्रह-स्थिति से आया; वह विश्वास और अनुष्ठान से आया है। यह भेद नैतिक रूप से भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि "लाभ विश्वास से है" और "लाभ ग्रह से है" — दोनों कथन अलग-अलग ज़िम्मेदारियाँ तय करते हैं।

10.5 संस्थागत और शैक्षिक निहितार्थ। यदि ज्योतिष-शिक्षण विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रमों का भाग है, तो उसे भी अन्य विषयों की भाँति परिणाम-आधारित और साक्ष्य-आधारित गुणवत्ता-कसौटियों से देखा जाना चाहिए। भारतीय उच्च शिक्षा में गुणवत्ता-सूचकांकों, अधिगम-परिणामों और अनुसंधान-संवर्धन की जो चर्चा हुई है [64-66], उसी तर्क से ज्योतिष-पाठ्यक्रमों में तीन अपेक्षाएँ रखी जा सकती हैं: (1) गणना-कौशल का स्पष्ट मूल्यांकन (स्तर 1); (2) शोध-पद्धति, सांख्यिकी और विज्ञान-दर्शन का समावेश; (3) फल-दावे को परंपरागत मान्यता और परीक्षित तथ्य के रूप में अलग-अलग पढ़ाना। नैतिक-शैक्षिक चिंतन भी चरित्र-निर्माण, जीवन-कौशल और विवेक पर बल देता है, जो ऐसी शिक्षा के लिए उपयुक्त आधार है [27]।

10.6 उपयोगकर्ता के लिए निर्णय-मार्गदर्शिका। शोध-निष्कर्षों को व्यवहार में उतारने के लिए एक संतुलित मार्गदर्शिका प्रस्तावित की जा सकती है। पहला, यदि परिवार को मुहूर्त में आस्था है, तो उसे अनुष्ठान-आश्वासन और सामाजिक समन्वय के लाभ के रूप में अपनाया जा सकता है, बशर्ते यह वित्तीय बोझ या किसी की सुरक्षा के जोखिम में परिवर्तित न हो। दूसरा, जहाँ विकल्प उपलब्ध हों, वहाँ संकेंद्रित "लग्न-तिथियों" से हटकर समान रूप से मान्य तिथियाँ चुनने से भीड़ और लागत घट सकती है। तीसरा, चिकित्सा, कानूनी या सुरक्षा-संबंधी आपात स्थितियों में मुहूर्त को निर्णय का आधार नहीं बनाना चाहिए। चौथा, जो ज्योतिषी अपनी पद्धति के पूर्वानुमान-सटीकता का दावा करते हैं, उनसे यह अपेक्षा उचित है कि वे दावे को परीक्षण के लिए प्रस्तुत करें। ये बिंदु किसी परंपरा के निषेध के लिए नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण उपयोग के लिए हैं, और गांधी-चिंतन की उस भावना से मेल खाते हैं जिसमें परंपरा का आदर और विवेक का आग्रह साथ-साथ चलते हैं [26,27]।

11. शोध की सीमाएँ

इस अध्ययन की कुछ स्पष्ट सीमाएँ हैं। (1) यह एक लक्षित वर्णनात्मक-संरचित समीक्षा है, पूर्ण व्यवस्थित समीक्षा या मेटा-विश्लेषण नहीं, इसलिए डेटाबेस-व्यापी खोज की गणनाएँ नहीं दी गई हैं। (2) समय-सीमा के कारण (2024 तक) बाद के प्रकाशन, जिनमें भारतीय ज्ञान-परंपरा और योग-कालचक्र पर नवीन कार्य हैं, शामिल नहीं हुए। (3) प्रायोगिक परीक्षण प्रायः पश्चिमी जनसंख्या और जन्म-कुंडली-आधारित दावों पर हुए हैं; मुहूर्त-विशिष्ट और भारतीय संदर्भ के परीक्षण दुर्लभ हैं। (4) कुछ संख्याएँ (जैसे तिथि की अवधि-सीमा) औसत गतिमान आँकड़ों से निकले अनुमानित मान हैं, जिनका सटीक निर्धारण वास्तविक एफ़ेमेरिस-गणना से ही हो सकता है। (5) प्रस्तावित त्रिस्तरीय प्रतिमान और समन्वय-परिकल्पना सैद्धांतिक निर्मितियाँ हैं, जिनका अनुभवजन्य परीक्षण आगे होना है। (6) शास्त्रीय श्लोकों के उद्धरण प्रचलित पाठ-परंपरा पर आधारित हैं; पाठांतर और अध्याय-संख्याएँ संस्करणों में भिन्न हो सकती हैं, इसलिए प्रकाशन-पूर्व मूल ग्रंथ से अंतिम मिलान उचित होगा।

12. निष्कर्ष एवं सुझाव

भारतीय ज्योतिष का काल-विभाजन एक गंभीर दार्शनिक-गणितीय निर्मिति है। उसमें काल का मूर्त और अमूर्त रूप में विभाजन है, निमेष से अहोरात्र तक सुसंगत गणितीय श्रृंखला है, और पुरुषार्थ तथा दैव के बीच संतुलन का दार्शनिक आग्रह है। पंचांग की पाँच इकाइयाँ आधुनिक खगोल-विज्ञान से सत्यापन-योग्य हैं, और केरल-परंपरा जैसे उदाहरण प्रेक्षण-आधारित स्व-सुधार की क्षमता प्रमाणित करते हैं। दूसरी ओर, मुहूर्त के शुभाशुभ फल-दावों के लिए उपलब्ध सुनियोजित प्रायोगिक साक्ष्य अब तक समर्थन नहीं देता, और कई परिहार-नियम मिथ्याकरणीयता की कसौटी पर कमजोर पड़ते हैं। फिर भी मुहूर्त की सामाजिक भूमिका वास्तविक और व्याख्येय है: वह समन्वय का साझा संकेत, अनुष्ठान-जनित मनोवैज्ञानिक आश्वासन और संस्कार-संस्कृति की निरंतरता का साधन है।

सुझाव

- *शोधकर्ताओं के लिए:* मुहूर्त-विशिष्ट, पूर्व-पंजीकृत, अंध-वर्गीकृत प्राकृतिक प्रयोग किए जाएँ; प्रशासनिक आँकड़ों (विवाह-पंजीकरण, कंपनी-पंजीयन) को पंचांग-वर्गीकरण से जोड़ने की पद्धति विकसित हो।
- *पंचांग-निर्माताओं के लिए:* गणना-पद्धति, अयनांश और एफ़ेमेरिस का स्पष्ट उल्लेख हो, ताकि अंतर-गणक विश्वसनीयता का आकलन हो सके।
- *शिक्षा-संस्थानों के लिए:* ज्योतिष-पाठ्यक्रमों में गणना, पद्धति और विज्ञान-दर्शन का समावेश तथा गणनात्मक एवं फलात्मक ज्ञान का स्पष्ट अलगाव।
- *समाज के लिए:* आपातकालीन चिकित्सा या सुरक्षा-निर्णयों में मुहूर्त-प्रतीक्षा से बचने का विवेक, और ज्योतिषीय सेवाओं में अप्रमाणित सटीकता के दावों पर संयम।
- *आगामी अध्ययन के लिए:* कालजैविकी और पंचांग-समय का तुलनात्मक अध्ययन; मुहूर्त-समन्वय परिकल्पना का आर्थिक-समाजशास्त्रीय परीक्षण; क्षेत्रीय पंचांग-भेदों का मात्रात्मक विश्लेषण।

अंततः इस अध्ययन का संदेश दोहरा है। परंपरा की गणितीय उपलब्धि को वैज्ञानिक ईमानदारी के साथ स्वीकार करना चाहिए, और उसके अपरीक्षित दावों को भी उतनी ही ईमानदारी से "अपरीक्षित" कहना चाहिए। "काल" को समझने का भारतीय प्रयत्न तभी आगे बढ़ेगा जब श्रद्धा और परीक्षण, दोनों को अपनी-अपनी मर्यादा में स्थान मिले।

संदर्भ (References)

1. Kuppanna Sastry TS. Vedāṅga Jyotiṣa of Lagadha. Sarma KV, editor. New Delhi: Indian National Science Academy; 1985.
2. Pingree D. Jyotiḥśāstra: astral and mathematical literature. Wiesbaden: Otto Harrassowitz; 1981. (A history of Indian literature; vol. 6, fasc. 4).
3. Ahluwalia PS. भाषा, संस्कार और संस्कृति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण. शब्दसागर. 2023;35-41.
4. Ahluwalia PS. संस्कार और संस्कृति: समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन. शब्दसागर. 2023;17-25.
5. Ahluwalia PS. भाषा और संस्कृति के विकास में संस्कारों का महत्व: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. शब्दसागर. 2024;1-8.

6. Ahluwalia PS. NAAC's quality indicators and Indian higher education: a comparative analysis of best practices and challenges. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024:38-66.
7. Ahluwalia PS. Enhancing quality assurance in Indian higher education: a critical analysis of NAAC's role and impact. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024:193-210.
8. Page MJ, McKenzie JE, Bossuyt PM, Boutron I, Hoffmann TC, Mulrow CD, et al. The PRISMA 2020 statement: an updated guideline for reporting systematic reviews. BMJ. 2021;372:n71.
9. Tricco AC, Lillie E, Zarin W, O'Brien KK, Colquhoun H, Levac D, et al. PRISMA extension for scoping reviews (PRISMA-ScR): checklist and explanation. Ann Intern Med. 2018;169(7):467-73.
10. Ahluwalia PS. Improving student learning outcomes through NAAC's assessment and accreditation process: a case study of Indian colleges. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2023:25-40.
11. Ahluwalia PS. Strategic implications of NAAC's outcome-based education approach on Indian higher education: a case study. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024:95-123.
12. Ahluwalia PS. Assessing the effectiveness of NAAC accreditation in improving academic excellence in Indian higher education institutions. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024:146-59.
13. Ahluwalia PS. Ethical issues in social science research. Shodh Patra: Int J Multidiscip Stud. 2024:1-8.
14. Ahluwalia PS. Plagiarism: detection techniques and tools. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024:1-11.
15. Whitney WD, translator. Atharva-Veda Saṃhitā. Lanman CR, editor. Cambridge (MA): Harvard University; 1905.
16. Sargeant W, translator. The Bhagavad Gītā. Albany: State University of New York Press; 1984.
17. Burgess E. Translation of the Sūrya-Siddhānta, a text-book of Hindu astronomy. J Am Orient Soc. 1860;6:141-498.
18. Olivelle P, translator. Manu's code of law: a critical edition and translation of the Mānava-Dharmaśāstra. New York: Oxford University Press; 2005.
19. Shukla KS, Sarma KV. Āryabhaṭīya of Āryabhaṭa. New Delhi: Indian National Science Academy; 1976.
20. Plofker K. Mathematics in India. Princeton: Princeton University Press; 2009.
21. Sen SN, Shukla KS, editors. History of astronomy in India. New Delhi: Indian National Science Academy; 1985.
22. Kak S. Astronomy of the Vedic altars. Vistas Astron. 1993;36(2):117-40.
23. Kak S. The astronomical code of the Ṛgveda. New Delhi: Aditya Prakashan; 2000.

24. Kane PV. History of Dharmaśāstra. Vol. 5, part 1. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute; 1958.
25. Olivelle P, translator. Yājñavalkya: a treatise on dharma. Cambridge (MA): Harvard University Press; 2019.
26. Ahluwalia PS. गांधी जी के जीवन मूल्य और वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता. शब्दसागर. 2024;6-17.
27. Ahluwalia PS. गांधी जी की शिक्षा नीति: नैतिकता और जीवन कौशल के विशेष संदर्भ में. शब्दसागर. 2024;9-16.
28. Meeus J. Astronomical algorithms. 2nd ed. Richmond (VA): Willmann-Bell; 1998.
29. Chatterjee SK. Indian calendric system. New Delhi: Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting; 1998.
30. Park RS, Folkner WM, Williams JG, Boggs DH. The JPL planetary and lunar ephemerides DE440 and DE441. Astron J. 2021;161(3):105.
31. Kelley DH, Milone EF. Exploring ancient skies: a survey of ancient and cultural astronomy. 2nd ed. New York: Springer; 2011.
32. Saha MN, Lahiri NC. Report of the Calendar Reform Committee. New Delhi: Council of Scientific and Industrial Research; 1955.
33. Pingree D. The Yavanajātaka of Sphujidhvaja. Cambridge (MA): Harvard University Press; 1978.
34. Pingree D. From astral omens to astrology: from Babylon to Bīkāner. Rome: Istituto Italiano per l'Africa e l'Oriente; 1997.
35. Ramasubramanian K, Srinivas MD, Sriram MS. Modification of the earlier Indian planetary theory by the Kerala astronomers (c. 1500 AD) and the implied heliocentric picture of planetary motion. Curr Sci. 1994;66(10):784-90.
36. Rao SB. Indian astronomy: an introduction. Hyderabad: Universities Press; 2000.
37. Daivajña R. Muhūrtacintāmaṇi, with the Pīyūṣadhārā commentary. Varanasi: Chaukhamba Sanskrit Sansthan; [n.d.].
38. Bhat MR, translator. Varāhamihira's Bṛhat Saṃhitā. Delhi: Motilal Banarsidass; 1981.
39. Santhanam R, translator. Bṛhat Parāśara Horā Śāstra. Delhi: Ranjan Publications; 1984.
40. Murthy KRS, translator. Vāgbhaṭa's Aṣṭāṅga Hṛdayam. Varanasi: Krishnadas Academy; 1991.
41. Popper KR. Conjectures and refutations: the growth of scientific knowledge. London: Routledge & Kegan Paul; 1963.
42. Thagard PR. Why astrology is a pseudoscience. PSA Proc Bienn Meet Philos Sci Assoc. 1978;1978(1):223-34.
43. Carlson S. A double-blind test of astrology. Nature. 1985;318(6045):419-25.
44. Kelly IW. Modern astrology: a critique. Psychol Rep. 1997;81(3 Pt 2):1035-66.

45. Dean G, Kelly IW. Is astrology relevant to consciousness and psi? *J Conscious Stud.* 2003;10(6-7):175-98.
46. Gauquelin M. *Dreams and illusions of astrology.* Buffalo (NY): Prometheus Books; 1979.
47. Narlikar JV. *The scientific edge: the Indian scientist from Vedic to modern times.* New Delhi: Penguin Books India; 2003.
48. Foster RG, Roenneberg T. Human responses to the geophysical daily, annual and lunar cycles. *Curr Biol.* 2008;18(17):R784-94.
49. Zimecki M. The lunar cycle: effects on human and animal behavior and physiology. *Postepy Hig Med Dosw.* 2006;60:1-7.
50. Cajochen C, Altanay-Ekici S, Münch M, Frey S, Knoblauch V, Wirz-Justice A. Evidence that the lunar cycle influences human sleep. *Curr Biol.* 2013;23(15):1485-8.
51. Rotton J, Kelly IW. Much ado about the full moon: a meta-analysis of lunar-lunacy research. *Psychol Bull.* 1985;97(2):286-306.
52. Biermann T, Estel D, Sperling W, Bleich S, Kornhuber J, Reulbach U. Influence of lunar phases on suicide: the end of a myth? A population-based study. *Chronobiol Int.* 2005;22(6):1137-43.
53. Roenneberg T, Wirz-Justice A, Mellow M. Life between clocks: daily temporal patterns of human chronotypes. *J Biol Rhythms.* 2003;18(1):80-90.
54. Wittmann M, Dinich J, Mellow M, Roenneberg T. Social jetlag: misalignment of biological and social time. *Chronobiol Int.* 2006;23(1-2):497-509.
55. Roenneberg T, Mellow M. The circadian clock and human health. *Curr Biol.* 2016;26(10):R432-43.
56. Schmidt C, Collette F, Cajochen C, Peigneux P. A time to think: circadian rhythms in human cognition. *Cogn Neuropsychol.* 2007;24(7):755-89.
57. Forer BR. The fallacy of personal validation: a classroom demonstration of gullibility. *J Abnorm Soc Psychol.* 1949;44(1):118-23.
58. Bell CM, Redelmeier DA. Mortality among patients admitted to hospitals on weekends as compared with weekdays. *N Engl J Med.* 2001;345(9):663-8.
59. Danziger S, Levav J, Avnaim-Pesso L. Extraneous factors in judicial decisions. *Proc Natl Acad Sci U S A.* 2011;108(17):6889-92.
60. Brooks AW, Schroeder J, Risen JL, Gino F, Galinsky AD, Norton MI, et al. Don't stop believing: rituals improve performance by decreasing anxiety. *Organ Behav Hum Decis Process.* 2016;137:71-85.
61. Damisch L, Stoberock B, Mussweiler T. Keep your fingers crossed! How superstition improves performance. *Psychol Sci.* 2010;21(7):1014-20.

62. Subbarayappa BV, Sarma KV, editors. Indian astronomy: a source book. Bombay: Nehru Centre; 1985.
63. Schelling TC. The strategy of conflict. Cambridge (MA): Harvard University Press; 1960.
64. Ahluwalia PS. Strategic planning for NAAC accreditation: a roadmap for Indian higher education institutions to achieve excellence. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2023;44-69.
65. Ahluwalia PS. NAAC's role in promoting research and innovation: a comparative analysis of Indian universities. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2023;47-70.
66. Ahluwalia PS. NAAC reforms and Indian education system: an empirical study on implementation challenges and opportunities. Siddhanta's Int J Adv Res Arts Humanit. 2024;84-108.